पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन
श्री प्रवचनसार गाथा १७२, अलिंगग्रहण बोल १-२ तथा समयसार गाथा ३१, ४९
धनतेरस ता. २०-१०-१९८७, प्रवचन LA १७४

श्री प्रवचनसार जी परमागम शास्त्र है। उसकी गाथा १७२ है। १७२ गाथा में शिष्य का प्रश्न है कि यह शुद्धात्म तत्त्व है, चैतन्य परमात्मा है और ये देह आदि परद्रव्य हैं; उनसे भिन्न करने का असाधारण लक्षण क्या है? कि जिसका प्रयोग करने पर देह और आत्मा भिन्न हैं - वे मुझे भिन्न जानने में आ जायें अर्थात् कि आत्मा का मुझे अनुभव हो, उसका साधन क्या है? आत्मा और देह भिन्न तो हैं, ये तो बराबर। (परंतु) मुझे जुदा जानने में नहीं आते। आपको जुदा जानने में आते हैं। शिष्य कहता है गुरु को कि आपको तो देह और आत्मा दोनों भिन्न-भिन्न, जुदा-जुदा हैं - ऐसा आपको तो अनुभव में आ गया परंतु मुझे ये भिन्न हैं - ऐसा जानने में नहीं आता। मुझे देह जानने में आती है परंतु आत्मा जानने में आता नहीं। मुझे क्रोधादि कषाय जानने में आती हैं परंतु मुझे आत्मा जानने में नहीं आता। मुझे ये पाँच इंद्रियों का उघाड़ जो है वो तो जानने में आता है। जिसमें जानने की क्रिया हो रही है वो भी जानने में आता है; परंतु उससे जुदा आत्मा है - ऐसा आप कहते हो, वह मुझे जानने में आता नहीं। अब मैं संसार के परिभ्रमण से थक गया हूँ प्रभु! मुझे मार्ग बताओ कृपा करके।

ये आत्मा इन्द्रियज्ञान से अर्थात् भावक का भाव; भावक अर्थात् द्रव्यकर्म, उसका भाव मोह-राग-द्वेष, क्रोध-मान-माया और लोभ ऐसे जो कषाय के परिणाम (हैं) ये भावक का भाव है, ये ज्ञायक का भाव नहीं है - ऐसा आप फरमाते हो। मैं भी यह स्वीकार करता हूँ कि कर्मकृत भाव हैं, जीवकृत नहीं, जीव की जाति नहीं। परंतु इस भावक के भाव से मेरा आत्मा-चैतन्य जुदा है, ऐसा आप फरमाते हो परंतु मुझे जुदा जानने में नहीं आता। तो मुझे ऐसे शुद्धात्मा को भिन्न जानना है, अनुभव करना है। तो उसका साधन कृपा करके मुझे बताओ, कि वह साधन मेरे पास है या आपके पास है? आपके पास हो तो दे दो हमें। तो आप मुझे दो तो उसके द्वारा मैं अपने आत्मा का अनुभव करूँ। तब श्रीगुरु कहते हैं कि वह साधन मेरे पास नहीं है। मेरा साधन मेरे पास है और तेरा साधन तेरे पास है।

तो आप कहते हो कि तेरा साधन तेरे पास है, तो वह साधन क्या है? उसका मुझे पता नहीं है। आप न दो तो कोई बात नहीं, मेरे पास है ये ज्यादा अच्छा हुआ (क्योंकि) स्वाधीनता आई। परंतु उस साधन की खबर नहीं है मुझे कि किस साधन के द्वारा ये भावक का भाव जो पुण्य-पाप के परिणाम, उससे मेरा आत्मा भिन्न जानने में आ जाये उस साधन द्वारा, वह साधन कृपा करके बताओ। तब श्रीगुरु कहते हैं कि उसको भिन्न करने का साधन (यह है कि) तेरे पास वर्तमान वर्तता जो उपयोग है, वह उपयोग बहिर्मुख हो जाता है, उस उपयोग को अंतर में झुकाकर आत्मा को देख, तो उस उपयोग के द्वारा तेरा आत्मा जानने में आयेगा तुझे। पर शर्त यह है कि वह उपयोग अंतर्मुख हो तो जानने में आए। ऐसे (बाहर) उपयोग रहेगा तब तक जानने में नहीं आएगा।

फिर शिष्य दूसरा प्रश्न करता है कि तो फिर ये जो इन्द्रियज्ञान है, इन्द्रियज्ञान शब्द का प्रयोग नहीं किया, कि वर्तमान वर्तता ज्ञान मेरे पास है, उसके द्वारा ये भावक का भाव - रागादि वो जुदा अनुभव में आये कि नहीं? कि ना! उसके द्वारा भी आत्मा जुदा अनुभव में आता नहीं है। तो आपने अभी कहा कि उपयोग द्वारा आत्मा अनुभव में आता है। तो वर्तमान उपयोग तो मेरे पास है; आँख से देखता हूँ, कान से सुनता हूँ - ये भी ज्ञान उपयोग ही है। तो कहते हैं कि ये तेरी श्रद्धा विपरीत है, ये श्रद्धा का बड़ा दोष है। तू जिसे ज्ञान मान रहा है वो ज्ञेय है अथवा वह ज्ञेय का भाव है। जैसे रागादि भावक का भाव है ज्ञायक का भाव नहीं है, वैसे (ही) यह इन्द्रियज्ञान - पाँच इन्द्रिय का उघाड़ (और) छठवाँ मन, वह इन्द्रियज्ञान है। वह इन्द्रियज्ञान ज्ञान नहीं है परंतु वह ज्ञेय है। वह ज्ञेय का भाव है क्योंकि मूर्तिक पदार्थ को प्रसिद्ध करता है, इसलिए उस ज्ञान को हम मूर्तिक कहते हैं; और आत्मा अमूर्तिक है। तो मूर्तिक ज्ञान के द्वारा अमूर्त ऐसा आत्मा, अरूपी ऐसा आत्मा जाना नहीं जा सकता।

तो फिर मुझे क्या करना? कि तुझे पहले मिथ्याश्रद्धा के ऊपर कुल्हाड़ा मारना पड़ेगा। मिथ्याश्रद्धा के ऊपर बड़ा चौकड़ा (**X**) मारना पड़ेगा। कि मैं मारने के लिए तैयार हूँ। अब तो मुझे आत्मा का अनुभव करना है। इसलिये आप जैसा कहो वैसा करने के लिये मैं तैयार हूँ। अभी तक मैंने (जो) किया, उसके ऊपर मिट्टी डालता हूँ। अभी तक मैंने बहुत किया, नौवें ग्रैवेयक में भी गया, बारह प्रकार के तप तपे, द्रव्यलिंगी मुनि हुआ। आहाहा! पाँच महाव्रत निरतिचारपने पालन किये। कोई दोष लगे तो अपने गुरु के पास जाकर प्रायश्चित लेता था। ये सब किया परंतु भगवान आत्मा का दर्शन हुआ नहीं।

तो श्रीगुरु कहते हैं कि जो इन्द्रियज्ञान मूर्तिक पदार्थ को प्रसिद्ध करता है, वो ज्ञान अमूर्तिक-अरूपी आत्मा को प्रसिद्ध नहीं कर सकता, तो अब मुझे क्या करना? कि तू (विपरीत) श्रद्धा छोड़ दे, (और ऐसा मान) कि ये भावक का भाव (है) - ये मेरा नहीं है, ये ज्ञेय का भाव (है), ये मेरा नहीं है। भावक का भाव अर्थात् क्रोध-मान-माया-लोभ के परिणाम, व्रत और अव्रत के परिणाम, पाप के परिणाम और पुण्य के परिणाम। वे द्रव्यकर्म के परिणाम हैं, वे जीव के परिणाम ही नहीं हैं - (इस प्रकार) तू उसका निषेध कर। आहाहा! आओ राजुभाई! इधर आओ, जगह है।

आज की बात ऐसी है कि जगत को गले उतरना मुश्किल है। लेकिन वह नेपाला बीज (जमाल गोटा) का रेच दिए बिना पेट साफ हो जाये ऐसा नहीं है। नेपाला बीज माँगते हैं, कि जिस इन्द्रियज्ञान द्वारा ..., वह भावक का भाव तो तेरा नहीं है, वे पुण्य के परिणाम तो तेरे नहीं हैं, उसका तो तू स्वामी नहीं है क्योंकि तेरी जाति से वह अलग है। वे मेरे नहीं हैं और उनका मैं कर्ता नहीं हूँ। मिथ्याश्रद्धा छोड़ दे। ये तेरी मिथ्याश्रद्धा है (कि वे मेरे हैं और उनका मैं कर्ता हूँ)। फिर जो यह इन्द्रियज्ञान है उसके द्वारा, आँख द्वारा मैं रूप-रंग को जानूँ, कान के पास क्षयोपशम का उघाड़ है उसके द्वारा देशनालब्धि सुनूँ और आँख द्वारा प्रवचनसार की गाथा पढ़ूँ, हिंदी में हो तो हिंदी में। आहाहा! देखो! हिंदी शब्द आया।

क्या कहा? कि इस आँख द्वारा ये मैं प्रवचनसार, समयसार पढ़ूँ, मंदिर में बैठकर स्वाध्याय करूँ। और इस आँख के द्वारा भगवान का दर्शन मैं करूँ और इन कानों के द्वारा देशनालब्धि सुनूँ, तो आचार्य भगवान कहते हैं कि ये ज्ञान तेरा नहीं है। जो ज्ञान पर को प्रसिद्ध करता है वो ज्ञान आत्मा का नहीं है। व्यवहारनय उसको 'आत्मा का ज्ञान है' - ऐसी झूठी बात करता है। ये राग तो आत्मा का है ही

नहीं, मगर ये जो इन्द्रियज्ञान है वो भी तेरी चीज नहीं है। जो पर को प्रसिद्ध करे और अपने को प्रसिद्ध न करे, उसका नाम ज्ञान नहीं मगर अज्ञान है, ज्ञेय है।

तो तेरी (जो) मिथ्याश्रद्धा है (वो) पलटनी चाहिये। मिथ्याश्रद्धा रखकर तू ध्यान में बैठ जाता है, तो वो धर्मध्यान प्रगट नहीं होगा; वो तो आर्तध्यान होगा। क्योंकि वो जो इन्द्रियज्ञान है वो मेरा है और उसके माध्यम से मैं जानता हूँ - ऐसी विपरीत श्रद्धा तो रखता है और अनुभव करना है! नगिनभाई! ये सूक्ष्म बात है, पूरे जगत से अलग है। ये बात जगत के जीवों के कान पर पड़ती नहीं है। सुबह मावजीभाई ने कहा कि ये बात नई सुनने को मिल रही है। बात सच्ची है! ये बात कुंदकुंदाचार्य भगवान के सिवाय, दिगम्बर संतो के सिवाय ये बात जगत में कहीं भी तुम्हें नहीं मिलेगी; और जगत को कहोगे तो कोई मानेगा नहीं। हाँ! निकट भव्य होगा वो मानेगा और अपना काम करके चला जायेगा। बाकी तेरी बात कोई सुनेगा नहीं। तेरी बात कोई सुनेगा भी नहीं। वो ड्राइवर साहब हँसते हैं। हँसते हैं वो।

मुमुक्षु: रुचिवाले (हैं)।

पू. लालचंदभाई: बात सच्ची है! कोई सुनेगा नहीं तेरी बात।

तो आचार्य भगवान फरमाते हैं कि मेरे को जो सुनेगा नहीं तो सुनाना भी नहीं है। मेरे स्वरूप में मैं तो लीन हो जाता हूँ। और कोई भूखा-प्यासा आ जाये, कोई तत्त्व का प्यासा, और हमसे पूछे, तो उसको मैं बताऊँगा। आहाहा! मैं सामने से बोध देने को नहीं जाऊँगा। कोई पूछे मेरे को कि इस भावक के भाव से आत्मा जुदा और इन्द्रियज्ञान (अर्थात्) ज्ञेय से आत्मा जुदा; कृपा करके मेरे को बताओ, कहो (कि) उसका साधन क्या (है)? तो मैं कहता हूँ, जिज्ञासा से जो कोई पूछे तो मैं कहता हूँ। कि सुन! ये इन्द्रियज्ञान तेरा नहीं है। और इन्द्रियज्ञान मेरा है- ऐसा मानता है, वो मिथ्यादृष्टि है। और उससे (इन्द्रियज्ञान से) मैं जानता हूँ, (वह) double (दोगुना) मिथ्यादृष्टि है।

हीराभाई! आहाहा! बहुत अपूर्व बात है! यह तो कोई संतों की अलौकिक बात है कि ये परिणाम तेरा नहीं है। आहाहा! जो परपदार्थ का प्रतिपादन करनेवाला इन्द्रियज्ञान (है)- स्पर्श इन्द्रिय, रस इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय, चक्षु इन्द्रिय (और) श्रोत इन्द्रिय - ये जो उघाड़ है ज्ञान का, क्षयोपशम ज्ञान का, वो तेरी चीज नहीं है। वो मेरी है- ऐसा मिथ्याश्रद्धान रखकर तू लाख प्रयोग करेगा तो उपयोग अभिमुख नहीं होगा। बहिर्मुख उपयोग को अपना मानना और अंदर में जाना, (ऐसा) बनेगा नहीं। इसलिये आचार्य भगवान ने दो शब्द लगाए अलिंगग्रहण के बोल में। पहला बोल आ गया कि आत्मा है, अतीन्द्रियज्ञानमय भगवान आत्मा वो इन्द्रियज्ञान के द्वारा पर को जानता नहीं है। और पर को जानता हूँ ऐसा मानता है वो अजैन है। जैन नहीं है यानि अज्ञानी है, यानि अज्ञानी है।

अब दूसरा बोल आयेगा। वो तो बोल पूरा हो गया कि इन्द्रियज्ञान द्वारा मैं पर को जानता नहीं हूँ। (इससे विपरीत) मानता है वो अज्ञानी है। और (यदि) मान्यता चालू रखता है तो (इसका अर्थ कि) उसको अज्ञान चालू रखना है, अज्ञान छोड़ना नहीं है। भले अंतर्मुख होने के लिये देर लगे परंतु एक बार तो निषेध कर कि ये (इन्द्रिय)ज्ञान मेरा नहीं है। अब ज्ञान - यदि इन्द्रियज्ञान मेरा नहीं है, (तो) मोटर और बंगला और ये शरीर, ये तो कहाँ का कहाँ (रहा) बाहर, दुनिया बाहर रह गया।

अब दूसरा एक प्रकरण कहते हैं। दूसरी बात बताते हैं कि **ग्राह्य (ज्ञेय)**। पहले (बोल) में ज्ञायक था। वो ज्ञायक आत्मा इन्द्रियज्ञान के द्वारा पर को जानता नहीं है क्योंकि **'आत्मा अतीन्द्रिज्ञानमय' है**

- इस अर्थ की उपलब्धि हो जाती है। ऐसा पहले वाक्य में, पहले बोल में कहा था। अब दूसरे बोल में ये आत्मा ज्ञेय है। पहले कहा था ज्ञायक-जाननेवाला, ज्ञायक यानि जाननेवाला। दूसरे बोल में ये आत्मा जनाने योग्य- जानने में आने योग्य। जाननेवाला और जनाने योग्य- वो ज्ञेय है। जाननेवाला ज्ञायक है और जनाने योग्य आत्मा का स्वभाव है, उसका नाम ज्ञेय है। आत्मा ज्ञायक भी है और आत्मा ज्ञेय भी है। वो (आत्मा) ज्ञेय है, तो वो (आत्मा जो) ज्ञेय है, वो इन्द्रियज्ञान के द्वारा आत्मा जानने में नहीं आयेगा। इन्द्रियज्ञान के द्वारा पर को नहीं जानता है और इन्द्रियज्ञान के द्वारा स्व को नहीं जान सकता है। आत्मा का अनुभव उसमें नहीं होगा। वो साधन नहीं है आत्मा का अनुभव करने के लिये। इन्द्रियज्ञान का निषेध करना पड़ेगा कि इन्द्रियज्ञान से मेरा आत्मा जानने में आनेवाला नहीं है।

दूसरे बोल में ये है कि आत्मा ज्ञेय नहीं बनता है, जैसे इन्द्रियज्ञान का ये (चिमटा) ज्ञेय बनता है; इन्द्रियज्ञान उसको (चिमटा को) ज्ञेय बनाए और इन्द्रियज्ञान अपने आत्मा को ज्ञेय बनाये - आत्मा इन्द्रियज्ञान में जानने में आये (ऐसा) तीनकाल में बननेवाला नहीं है। इसलिये जुदा ज्ञान है, नया ज्ञान प्रगट होता है - अतीन्द्रियज्ञान।

तो कैसे प्रगट हो? कि इन्द्रियज्ञान से मैं जानता भी नहीं हूँ और इन्द्रियज्ञान से आत्मा जानने में आता भी नहीं है। ऐसा उसको मिथ्याश्रद्धान छोड़ना पड़ेगा। आहाहा! कि प्रत्यक्ष दिखता है, ये (तो) सब दिखने (योग्य परपदार्थ) दिखाई देता है मेरे से! कि वो जो परपदार्थ को देखनेवाला (है, वो) जुदा है, (वो) मैं नहीं (हूँ)। रागादि का करनेवाला जुदा है, मैं रागादि का करनेवाला नहीं हूँ। ऐसे परपदार्थ को जाननेवाला जुदा है, मैं जाननेवाला नहीं हूँ। 'बीजो बीजाने करे छे अने बीजो बीजाने जाणे छे।' गुजराती! इसका हिंदी नहीं आता मुझे। 'बीजो बीजाने करे छे अने बीजो बीजाने जाणे छे।' क्या हुआ उसका हिंदी प्रोफेसर साहब? 'दूसरा दूसरे को करता है और दूसरा दूसरे को जानता है।' दूसरा दूसरे को जानता है, मैं दूसरे को जानता नहीं हूँ। वो (इन्द्रियज्ञान से) जाननेवाला जुदा है और उससे आत्मा जुदा है। मैं (इन्द्रियज्ञान से) जाननेवाला नहीं हूँ। जाननेवाला, उसको (परपदार्थ को) जाननेवाला मैं नहीं हूँ। दूसरा दूसरे को जानता है, दूसरा दूसरे को जानता है - मैं (उसका) जाननहार नहीं हूँ। आहाहा! दूसरे को मैं जाननेवाला नहीं हूँ। मैं तो अपने को, ज्ञायक को जाननेवाला हूँ। जाननेवाला भी मैं और जनाया (ज्ञात हुआ) जनाये वो भी मैं। ये ज्ञायक भी मैं और ज्ञेय भी मैं - इतना भेद निकल जाने से आत्मा का अनुभव हो जाता है। आहाहा!

इन्द्रियज्ञान से आत्मा जानने में आता नहीं है। आहाहा! आँख से तो आत्मा जानने में नहीं आता है, मगर जो भावमन इधर (छाती में) है, उसके द्वारा भी आत्मा अनुभव में नहीं आता है। द्रव्यमन तो जड़ है, मगर भावमन है जिसमें विकल्प उत्पन्न होता है, वो मन का धर्म है, ज्ञान का धर्म नहीं है। ज्ञान तो, मन से जुदा, मन से भी अधिक-जुदा-भिन्न एक नया अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होता है, उस ज्ञान में आत्मा जानने में (आता है)। उस ज्ञान में (आत्मा) ज्ञेय हो जाता है। आत्मा के ज्ञान में आत्मा ज्ञेय होता है। परपदार्थ के ज्ञान में आत्मा ज्ञेय नहीं होता है।

क्या कहा? ये (चिमटा) है न पदार्थ, इस परपदार्थ को जाननेवाला जो ज्ञान है - चक्षु, वो परपदार्थ को प्रसिद्ध करनेवाला जो ज्ञान है, उस ज्ञान में आत्मा जानने में आता नहीं है।

तो जब आचार्य भगवान फरमाते हैं कि **ग्राह्य (ज्ञेय) जिसका लिंगों के द्वारा**, लिंग यानि

इन्द्रियज्ञान। लिंग का अर्थ इन्द्रियज्ञान, **अर्थात् इंद्रियोंके द्वारा ग्रहण (-जानना) नहीं होता**, मन के द्वारा आत्मा जानने में नहीं आता है। आजकल बहुत (ध्यान की) शिविर लगाते हैं न। आहाहा! भाई! सर्वज्ञ भगवान की बात कोई अलग है। अन्यमत में ध्यान की विधि नहीं है और ध्येय क्या है, उसकी विधि भी (नहीं है)।

मुमुक्षु: ध्येय तो है ही नहीं।

पू. लालचंदभाई: ध्येय तो है ही नहीं मगर ध्यान भी नहीं है। ध्यान का साधन क्या है? किसके द्वारा ध्यान करना? भले आत्मा का ध्यान, कोई कहे कि आत्मा का ध्यान करता हूँ; तो साधन क्या है आत्मा का ध्यान करने का? कि मेरे पास मन है न! मन साधन नहीं है। आहाहा! ये जब आत्मा का अनुभव होता है तब **मन पावे विश्राम**। **वस्तु विचारत ध्यावतैं, मन पावै विश्राम।** (नाटक समयसार, उत्थानिका, गाथा १७) आहाहा! मन का व्यापार थोड़ी देर के लिए, क्षणभर (के लिए) बंद हो जाता है और एक नया अतीन्द्रियज्ञान, अंतर्मुखी प्रगट होता है, उसमें आत्मा का दर्शन हो जाता है। तो जब अतीन्द्रियज्ञान के द्वारा आत्मा ज्ञेय बन गया, जानने में आया और बाद में सविकल्पदशा आ गई, तो मन का व्यापार तो चालू हो गया मगर भेदज्ञान हो गया (कि) ये मन मेरा नहीं है। पहले मानता था कि मन मेरा है, और (जब) अनुभव हुआ (तो जाना) कि ज्ञायक मेरा है। जब ज्ञायक में मैं-पने की बुद्धि आ गयी और बाद में सविकल्पदशा आयी तो 'ये इन्द्रियज्ञान मेरा है'- ऐसी भ्रांति कभी नहीं होती है, स्वप्न में भी। और इन्द्रियज्ञान से मैं पर को और स्व को जानता हूँ - तीनकाल में होनेवाला नहीं है। आहाहा! ऐसा भेदज्ञान करने से, अभेद का अनुभव होने के बाद, भावमन और द्रव्यमन रह जाता है। भावेन्द्रिय रह जाती है, मगर 'भावेन्द्रिय जानने का साधन है' ऐसी मिथ्याबुद्धि छूट जाती है। भावेन्द्रिय नहीं छूटती है, मिथ्याबुद्धि छूट जाती है। मिथ्यात्व छूटता है और सम्यग्दर्शन हो जाता है। आहाहा!

अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण (-जानना) नहीं होता वह अलिंगग्रहण है; अ यानि नहीं, **लिंग** यानि इंद्रीय द्वारा, **ग्रहण** यानि जानना - नहीं होता। इन्द्रियज्ञान के द्वारा आत्मा जानने में आता नहीं है। और इन्द्रियज्ञान के द्वारा जानता भी नहीं है और इन्द्रियज्ञान के द्वारा जानने में आता भी नहीं है। आहाहा! **इसप्रकार 'आत्मा इन्द्रियप्रत्यक्षका विषय नहीं है'**, आत्मा इन्द्रियप्रत्यक्ष से जानने में आता नहीं है। **इस अर्थकी प्राप्ति होती है।** वो दो बोल most important (सबसे महत्वपूर्ण) हैं, वो हो गए। अब अपना विषय जो है समयसार का वो चालू करते हैं। ३१ गाथा है।

कर इन्द्रियजय ज्ञानस्वभाव रु, अधिक जाने आत्मको।
निश्चय विषैं स्थित साधुजन, भाषैं जितेन्द्रिय उन्हींको॥३१॥

इन्द्रियज्ञान को जीतने की विधि है। 'इन्द्रियज्ञान मेरा है' वो बड़ी भारी, मेरू पर्वत जैसी भूल है, छोटी भूल नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु: संसार का मूल बीज।

पू. लालचंदभाई: मूल बीज। इन्द्रियज्ञान को मेरा माना तो इन्द्रियज्ञान के जितने विषय हैं, उनमें मेरापना अपनेआप आ जाता है।

दूसरा बोल फिर से, **भिन्न-भिन्न अपने-अपने विषयोंमें व्यापारभावसे जो** अर्थात् भावइंद्रियाँ **विषयोंको खण्डखण्ड ग्रहण करती हैं** एक-एक इंद्रिय एक-एक विषय को ग्रहण करती है यानि

जानती है। ग्रहण यानि पकड़ना नहीं, (मगर) जानना। **विषयोंको खण्डखण्ड ग्रहण करती हैं (ज्ञानको खण्डखण्डरूप बतलाती हैं) ऐसी भावेन्द्रियोंको, प्रतीतिमें आनेवाली** श्रद्धा में आनेवाली, आहाहा! ये श्रद्धा में लिया था कि ये भावइन्द्रिय मेरी है। श्रद्धा पलट गयी, भावइन्द्रिय मेरी नहीं है। शरीर तो मेरा नहीं, आठ कर्म मेरे नहीं, राग मेरा नहीं मगर वो पर को जाननेवाला जो इन्द्रियज्ञान है वो भी मेरी चीज नहीं है - ऐसे अंतर्मुख होकर आत्मा की प्रतीति आती है। **प्रतीतिमें आनेवाली अखण्ड एक**, वो इन्द्रियज्ञान खंड-खंड था, इन्द्रियज्ञान के अंदर अनेक था, और भगवान आत्मा एक है। और **अखण्ड एक चैतन्यशक्तिताके द्वारा** यानि चैतन्य शक्ति का अवलंबन लेने से **सर्वथा अपनेसे भिन्न जाना;** आहाहा! कथंचित् भिन्न, कथंचित् अभिन्न - ऐसा नहीं है; सर्वथा भिन्न है। आहाहा! ये इन्द्रियज्ञान आत्मा से सर्वथा भिन्न है, अलग है। ओहोहो! इन्द्रियज्ञान की अस्ति, मेरे में उसकी नास्ति - ऐसी मेरी अस्ति! आहाहा! ऐसा अतीन्द्रियज्ञानमयी आत्मा मैं हूँ - ऐसी अस्ति, इस अस्ति का अनुभव किया तो मस्ती हो गई।

एक चैतन्यशक्तिताके द्वारा सर्वथा अपनेसे भिन्न जाना; इन्द्रियज्ञान रह गया मगर (उसमें से) मेरापना निकल गया। शरीर रह गया, मन रह गया, सब रह गया उसमें; मेरे में नहीं। उसमें रह गया, सब है, भले रहा, मगर ममता छूट गई। वो इन्द्रियज्ञान मेरा है ऐसी ममत्वबुद्धि छूट गई। ममत्व आया आत्मा में। आत्मा मेरा है, ये इन्द्रियज्ञान मेरा नहीं है - ऐसा अनुभव की दशा में भेदज्ञान होता है। आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है।

सर्वथा अपनेसे, सर्वथा शब्द पर वजन है। आहाहा! कथंचित् नहीं लिखा। आहाहा! सर्वथा यानि दो भाग हैं - अतींद्रियज्ञानमयी भगवान आत्मा और साथ में, साथ-साथ रहनेवाला इन्द्रियज्ञान उनके बीच में अत्यंताभाव है। एक में दूसरे की नास्ति है। ये दो अँगुली हैं, दो। दो हैं कि एक है? कि दो हैं। दो की सिद्धि कैसे हो सकती है? कि दो दिखती हैं। कि नहीं! ऐसे दो की सिद्धि नहीं होती। इसमें (एक अंगुली में) इसका (दूसरी अंगुली का) अभाव और इसमें (दूसरी अंगुली में) इसका (पहेली अंगुली का) अभाव। आहाहा! तो दो घट सकती हैं। एक में दूसरे की नास्ति और एक की अस्ति। आहाहा! अलौकिक जैनदर्शन! ये अनेकांत को मानते हैं कि नहीं? हाँ भाई! स्वपने है और परपने नहीं है, उसका नाम अनेकांत है। आत्मा आत्मारूपी है और आत्मा शरीररूपी है - इसका नाम अनेकांत नहीं है, (ये तो) फुदड़ीवाद है।

अनेकान्तिक मार्ग भी सम्यक् एकांत ऐसे निजपद की प्राप्ति कराने के सिवाय दूसरे किसी अन्य हेतु से उपकारी नहीं है (श्रीमद् राजचन्द्र वचनामृत पत्र ७०२)। अनेकांत-प्रमाण की बात की श्रीमद्जी ने, उसमें से सम्यक् एकांत निकालकर आत्मा का अनुभव कर। आहाहा!

ऐसे आत्मा, ध्रुव परमात्मा, निश्चय के द्रव्य, ज्ञायकभाव उसमें प्रमत्त-अप्रमत्त की नास्ति है। बंध-मोक्ष के परिणाम का आत्मा में अभाव है। बंध-मोक्ष के परिणाम की अस्ति परिणाम में भले हो मगर मेरे में नहीं है, ऐसा आत्मा मैं हूँ। आहाहा! जिसमें परिणाम नहीं है, जिसमें परिणाम नहीं है, परिणाम परिणाम में है मगर परिणाम मेरे में (नहीं है)। तो मेरे में क्या है? मेरे में ज्ञान-दर्शन-चारित्र-सुख ऐसे-ऐसे अनंत गुण (और) एक-एक गुण परिपूर्ण - ऐसे अनंत गुण से भरा हुआ मैं परमात्मा सर्वज्ञ अभी हूँ, परमात्मा हूँ। आहाहा! उसकी दृष्टि देने से आत्मा का साक्षात्कार होता है। आहाहा! आत्मा का अनुभव

होता है।

ऐसे आचार्य भगवान फरमाते हैं कि सर्वथा भिन्न है। कि देह को सर्वथा भिन्न कहो, कर्म को सर्वथा भिन्न कहो और मोह-राग-द्वेष को सर्वथा भिन्न कहो, परंतु इन्द्रियज्ञान कथंचित् भिन्न-अभिन्न (है न)? कि नहीं, सर्वथा भिन्न। आहाहा! ऐसा पाठ है इसमें। **सर्वथा अपनेसे भिन्न जाना**; आहाहा! २००० वर्ष पहले की बात है, ताड़पत्र (पर) लिखा हुआ शास्त्र है। सर्वज्ञ भगवान ने कहा है और केवली-श्रुतकेवली ने फरमाया है ऐसा अलौकिक शास्त्र, (समयसार) परमात्मा बनने का शास्त्र है। आहाहा! परमात्मा तो है, उस परमात्मा को जो बताता है और जो परमात्मा को जान लेता है, वो परमात्मा हो जाता है। आहाहा! जो अपने परमात्मा को नहीं जानता है वो परमात्मा बनता नहीं है। आहाहा! अपने आत्मा को नहीं जानता है वो बँधता है, और अपने आत्मा को जानता है वो मुक्त हो जाता है।

सर्वथा अपनेसे भिन्न जाना; ख्याल में आता है? थोड़ा-थोड़ा, थोड़ा-थोड़ा। **सर्वथा अपनेसे भिन्न**। आहाहा! ये फैक्टरी का ज्ञान है न, फैक्टरी जिसमें जानने में आती है न, वो ज्ञान तेरा नहीं है। आहाहा! ये ज्ञान फैक्टरी का है, वो ज्ञान फैक्टरी के साथ संबंध रखता है, वो ज्ञान मेरे साथ संबंधवाला नहीं है। जो पर की प्रसिद्धि करे वो पर ही है। फैक्टरी को प्रसिद्ध करे वो फैक्टरी ही है, ज्ञान है ही नहीं। आहाहा!

सर्वथा अपनेसे भिन्न जाना सो यह भावेन्द्रियो का जीतना हुआ। उसका नाम भावेन्द्रिय को जीता अर्थात् मोह को जीता, निर्मोह दशा हो गई। निरागी दशा नहीं, वीतरागी दशा नहीं, निर्मोह दशा हो गई। आहाहा! राग तो रह गया थोड़ा। वो राग तो जाने के लिए रहता है और जाने के लिए आता है; टिकने के लिए राग आता नहीं है। आहाहा! वो भी पुद्गल का परिणाम है ऐसा ज्ञान जानता है। वो परिणाम मेरा है ऐसा ज्ञान (में) जानने में आता नहीं है। वो भावेन्द्रिय का जीतना हुआ।

अब आगे, **ग्राह्यग्राहकलक्षणवाले सम्बन्धकी निकटताके कारण जो अपने संवेदन (अनुभव) के साथ परस्पर एक जैसे हुए दिखाई देते हैं ऐसे, भावेन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण किये हुए,** जाने हुए। भावेन्द्रिय और उसके द्वारा जो जाने हुए पदार्थ; द्रव्य इन्द्रिय, भावेन्द्रिय और भावेन्द्रिय के विषय वो तीनों इंद्रिय हैं। उनमें आत्मा नहीं है। **भावेन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण किये हुए,** (अर्थात्) जानने में आते जो **इंद्रियोंके विषयभूत स्पर्शादि पदार्थोंको -** स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द - जो जानने में आते हैं; इन्द्रियज्ञान के द्वारा जो उसके विषय - पदार्थ जानने में आते हैं वो **अपनी चैतन्यशक्तिकी स्वयमेव अनुभवमें आनेवाली असंगता** आहाहा! जो ज्ञान ज्ञेय का संग करता है, वो असंग नहीं (है) वो तो संगी हो गया। मैं संगी नहीं हूँ, मैं तो असंगी हूँ। आहाहा! मैं तो असंगी परमात्मा हूँ। जो परिणाम परपदार्थ के संग में जाता है वो परिणाम मेरा नहीं है, वो मेरी चीज नहीं। मेरा संग छोड़कर पर के संग में जो भावेन्द्रिय - खंडज्ञान जाता है, ओहोहो! वो तो व्यभिचारी है। आहाहा! पर के साथ संबंध नहीं होने पर भी, वो ज्ञान - इन्द्रियज्ञान, ज्ञेय के साथ संग में जाता है। असंग का संग छोड़कर, संग का संग करता है। संग यानि बाह्य पदार्थ, उनका संग करता है और असंग में नहीं आता है। असंग का संग नहीं करता है। असंग का संग तो अतीन्द्रियज्ञान करे, इन्द्रियज्ञान कर सकता नहीं है।

तो भावेन्द्रियों के जो विषय पाँच पदार्थ हैं, वो, उनको जीतने का उपाय क्या? कि **अपनी चैतन्यशक्तिकी स्वयमेव अनुभवमें आनेवाली असंगता**, भगवान आत्मा असंगी है, वो किसी का

संग करता ही नहीं है। और दूसरा मेरा संग करता नहीं है और मैं पर का संग नहीं करता हूँ - ऐसा असंगी तत्त्व है। आहाहा! (उसने) किसी के साथ आज तक संग किया नहीं है।

एक दफे की बात है सोगानीजी सोनगढ़ में पधारे थे। तब एकलिया तालाब है, वहाँ पर घूमने गए थे (हम) उनके साथ। तो कोई पुराना संबंधवाला उनको घर आकर बोलता था, 'अरे! सोगानीजी, मेरा और आपका संबंध बहुत पुराना है, पंद्रह साल का। आप मेरे को छोड़ गए, मेरे घर आते नहीं हैं, उतरते नहीं हैं, ठहरते नहीं हैं।' तो सोगानीजी ने क्या कहा, उस समय, कि 'वो तो निमित्त-नैमित्तिक संबंध करनेवाला एक समय का परिणाम था, मैं नहीं था। मैंने संग नहीं किया। मैंने संग आपका नहीं किया। मेरे को संगी मत जानो, मैं तो असंगी परमात्मा हूँ।' आहाहा!

मुमुक्षु: वाह वाह! बराबर! कितनी द्रव्यदृष्टि जाहिर करते हैं।

पू. लालचंदभाई: ये असंगी का बोल है। मैं पर का संग करूँ और पर का संग छोड़ूँ - ये मैं नहीं, वो पर है। पर पर का संग करता है और पर पर का संग छोड़ता है, मैं तो त्रिकाल असंगी हूँ। आहाहा! असंगी परमात्मा हूँ।

मुमुक्षु: श्रीमद्जी ने एक जगह लिखा है कि मैं असंग हूँ, अप्रतिबद्ध हूँ, मुक्त हूँ और निर्विकल्प हूँ।

पू. लालचंदभाई: आहाहा! तीनों काल निर्विकल्प, असंगी परमात्मा हूँ। आहाहा! श्रीमद्जी एकावतारी पुरुष हो गए, ज्ञानी थे लेकिन उनको पहचाननेवाले जीव वर्तमान में कम हैं। उनकी अंतर क्या स्थिति थी, बाह्य क्या स्थिति थी - ये जानना बहुत मुश्किल है। एक-एक शब्द की कीमत - मैं असंगी हूँ। बोलो! ये तीन-चार बोल इन भाई ने कहे....

मुमुक्षु: अप्रतिबद्ध हूँ।

पू. लालचंदभाई: अप्रतिबद्ध, किसी के साथ बँधा हुआ नहीं हूँ।

मुमुक्षु: मुक्त हूँ।

पू. लालचंदभाई: और मैं मुक्त हूँ। आहाहा! और निर्विकल्प हूँ। बोलो! असंगी है परमात्मा! परमात्मा किसी का संग (नहीं करता)। परमात्मा को क्या जरूरत पड़े कि दूसरे का संग करे? मुझे समझाओ। मेरा एक प्रश्न है कि परमात्मा दूसरे का संग किसलिए करे? कोई जरूरत हो तो करे।

मुमुक्षु: अपेक्षा हो या स्वयं में कोई अपूर्णता हो तो (करे)।

पू. लालचंदभाई: तो करे। परंतु परमात्मा तो परिपूर्ण है, ज्ञान और आनंद से भरा हुआ (है)। उसको दूसरे के संग की जरूरत क्या है? और दूसरे के पास से उसे लेना क्या है कि संग करने जाये? आत्मा असंगी परमात्मा है, संग करनेवाला आत्मा नहीं है। वो उसने ऐसा संग किया और ऐसा - ये सब व्यवहार की बात अभूतार्थ है, झूठी बात है! परिणाम संग करता है तो उपचार से आत्मा ने संग किया - वो उपचार का, व्यवहार का अभूतार्थ कथन है। भगवान आत्मा, आत्मा को परिणाम का परिचय ही नहीं है तो पर का परिचय तो कहाँ से हो? पर्याय का परिचय आत्मा को नहीं है क्योंकि परिणाम मात्र से आत्मा भिन्न है। आहाहा! परिणाम आत्मा को स्पर्श करता नहीं है, ऐसा अस्पर्शी और असंगी परमात्मा है। अपनी पर्याय अपने आत्मा को स्पर्श नहीं करती है। आहाहा!

अलिंगग्रहण के बीस बोल में - १८, १९ और २० बोल हैं। उसमें १८ वें बोल में कहा कि गुण-भेद

आत्मा को स्पर्श करता नहीं है इसलिए आत्मा शुद्ध रह गया। १९ वें बोल में कहा कि जो सामान्य तत्त्व है। (उस)को वो पर्याय स्पर्श नहीं करती इसलिए आत्मा शुद्ध है; असंगी रह गया। आहाहा! पराश्रित परिणाम या स्वाश्रित परिणाम - उनके संग में जाता ही नहीं है, असंगी परमात्मा है।

मुमुक्षु: बराबर! फिर २० वें बोल में क्या आता है?

पू. लालचंदभाई: २० वें बोल में ऐसा आता है कि जो पर्याय है, (उस)को वो सामान्य छूता नहीं है। १९ वें बोल में ऐसा आया कि सामान्य को विशेष छूता नहीं। सामान्य जो ज्ञायक तत्त्व असंगी है उसको, जो परिणाम प्रगट होते हैं, वह सामान्य तत्त्व को पर्याय छूती नहीं है, ये दृष्टि का विषय दिया। और २० वें बोल में ज्ञान का विषय दे दिया - पर्याय, द्रव्य (से) स्पर्शित नहीं (होती), ऐसी पर्याय शुद्ध है वो आत्मा है। आहाहा! दो सत् अलग-अलग (हैं)। सामान्य को पर्याय छूती नहीं इसलिए असंगी (है)। और पर्याय को सामान्य छूता नहीं इसलिए वह एक समय का सत् उसमें - ज्ञान का, आनंद का - अनुभव आता है इसलिए उसे आत्मा कहने में (आता है)। वह अनुभव की प्रधानता से पर्याय को आत्मा कहा, दृष्टि की प्रधानता से द्रव्य को आत्मा कहा। आहाहा!

असंग का बोल चलता है। आहाहा! परिणाम को आत्मा छूता नहीं है। व्यक्त पर्याय को आत्मा स्पर्श नहीं करता इसलिए अव्यक्त है। ५ वें बोल में है। आहाहा! ४९ वीं गाथा (में) ६ बोल हैं। उसमें पाँचवे बोल में है कि व्यक्त और अव्यक्त एक साथ प्रतिभासित होने पर भी वह व्यक्त को स्पर्श करता नहीं, छूता नहीं है, इसलिए आत्मा असंगी है। लो! इसमें निकालकर देखते हैं, अपने पास ही है। अभ्यास नहीं तत्त्व का, क्या करें?

व्यक्तता और अव्यक्तता एकमेक मिश्रितरूपसे उसे अर्थात् आत्मा को **प्रतिभासित होने पर भी** अर्थात् जानने में आने पर भी; द्रव्य और पर्याय दोनों एक समय में जानने में आते हैं। **होने पर भी वह** अर्थात् आत्मा, शुद्धात्मा, सामान्य आत्मा **व्यक्तताको** अर्थात् पर्याय प्रगट होती है उसको **स्पर्श नहीं करता, इसलिये** आत्मा **अव्यक्त है**, (अव्यक्त के बोल ५) असंगी है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम को आत्मा छूता नहीं है। तेरे राग की बात तो कहाँ रही? आहाहा! अपना जो शुद्धात्मा दृष्टि का विषय है, जो ध्येयभूत आत्मा है, वो ध्यान को स्पर्श नहीं करता है। धर्मध्यान और शुक्लध्यान को स्पर्श नहीं करता है। भगवान आत्मा और धर्मध्यान एक साथ प्रतिभासित होने पर भी वो भगवान आत्मा धर्मध्यान और शुक्लध्यान की पर्याय को छूता नहीं है, अड़ता नहीं है, स्पर्श करता नहीं है - ऐसा मैं हूँ! (यदि ऐसा समझे) तो सम्यग्दर्शन हो जाता है। आहाहा! मीठाभाई! आज धनतेरस है न।

मुमुक्षु: आज तो आना ही चाहिए न।

पू. लालचंदभाई: आज धनतेरस है।

मुमुक्षु: ये धुन आती कहाँ से है?

पू. लालचंदभाई: ये गुरुदेव का प्रताप है। (उनका) हमारे ऊपर ऐसा हाथ है। हाथ है, आशीर्वाद देते हैं न। आशीर्वाद देते हैं न। वहाँ से आता है सब। वहाँ से इधर आता है। आहाहा! ऐसी ही परंपरा, ऐसी ही परंपरा चलती रहेगी। अरे! दृष्टि का विषय दृष्टि में आए बिना दृष्टि निर्मल होती नहीं है। चारित्र का किसी भी प्रकार का सुधार करो और ज्ञान को बढ़ाओ, वो ज्ञान नहीं बढ़ेगा (बल्कि) ज्ञेय बढ़ेगा, मिथ्यात्व बढ़ेगा, अज्ञान बढ़ेगा। ज्ञान बढ़नेवाला नहीं है। ज्ञान की उत्पत्ति अलग type (प्रकार) से होती

है। आहाहा!

असंगी हूँ- बोल आया असंगी है, उसकी चर्चा चलती है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निर्विकारी, अकषायी, वीतरागी परिणाम, निश्चय रत्नत्रय का परिणाम, भगवान सामान्य तत्त्व (परिणाम) को स्पर्शता नहीं है, ऐसा मैं हूँ। आहाहा! तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का परिणाम प्रगट हो जाता है और कथंचित् अभेद भी हो जाता है और कथंचित् स्पर्श भी हो जाता है। आहाहा! अलौकिक बात है! ऐसा असंगपने का बोल है।

(गाथा ३१:) **अपनी चैतन्यशक्तिकी स्वयमेव अनुभवमें आनेवाली** आहाहा! अपनेआप ऐसा अनुभव में आता है कि मैं तो असंगी परमात्मा हूँ। तो जो पाँच इन्द्रिय के विषय हैं, उनमें आत्मबुद्धि छूट जाती है और आत्मा में आत्मबुद्धि आ जाती है। **असंगताके द्वारा** (यानि) उस साधन के द्वारा, **सर्वथा अपनेसे अलग किया;** तीनों बोल में सर्वथा-सर्वथा शब्द है। द्रव्य इन्द्रिय को भी सर्वथा अत्यंत भिन्न (कहा) और भावइन्द्रिय को भी सर्वथा अत्यंत भिन्न (कहा) और इन्द्रियज्ञान के जो विषय हैं वो भी आत्मा से अत्यंत भिन्न, सर्वथा भिन्न (हैं)। **अपनेसे अलग किया; सो यह इन्द्रियोंके विषयभूत पदार्थोंका जीतना हुआ।**

इसप्रकार, total (समापन), total लगाते हैं। सारा, तीन प्रकार की इन्द्रिय को जीतने का प्रकार-विधि बता दी, वो उसकी बात करते हैं। **इसप्रकार जो (मुनि)** अथवा भव्य आत्मा **द्रव्येन्द्रियों, भावेन्द्रियों तथा इन्द्रियोंके विषयभूत पदार्थोंको (तीनोंको) जीतकर,** आहाहा! यानि मोह को जीतकर। इन्द्रियज्ञान जीता तो मोह पर जीत हो गई। इन्द्रियज्ञान को जीतता नहीं है तो निर्मोह दशा होती नहीं है। **(तीनोंको) जीतकर, ज्ञेयज्ञायक-संकर नामक दोष आता था** ये निश्चय-स्तुति बताते हैं। आहाहा! व्यवहार-स्तुति में देह को, तीर्थंकर भगवान की देह को जानकर ऐसा मानता है कि मैंने इन तीर्थंकर भगवान की स्तुति की। आचार्य भगवान कहते हैं कि ये ज्ञेय-ज्ञायक का संकरदोष हो गया। आहाहा! ये (पर) ज्ञेय और मैं ज्ञायक, आहाहा! ये वहाँ (बाहर) ज्ञेय नहीं है तेरा, तेरा ज्ञेय तो इधर (अंदर) है। तू वहाँ (बाहर) कहाँ नजर करता है? इधर (अंदर) नजर कर तो निश्चय-स्तुति प्रगट होगी। आहाहा! कि भगवान की स्तुति करना कि नहीं? वंदन करना कि नहीं? पूजा करना कि नहीं? हाँ! जरूर करना। भक्ति करना? कि हाँ! भक्ति जरूर करना। भगवान की भक्ति से मोक्ष होता है। क्या कहा? (स्वयं) भगवान की भक्ति से मोक्ष होता है मगर भगवान इधर (अंदर) है। तेरा भगवान वहाँ (बाहर) कहाँ है (जो तू) ढूँढता है बाहर में? तेरा भगवान तो, तू ही भगवान है। आहाहा!

(तीनोंको) जीतकर, ज्ञेयज्ञायक-संकर नामक दोष (अर्थात्) एकत्वबुद्धि, ज्ञेय और ज्ञायक भिन्न-भिन्न होने पर भी... तीनों का नाम ज्ञेय है - द्रव्येन्द्रिय ज्ञेय, भावेन्द्रिय ज्ञेय और भावेन्द्रिय का विषय भी ज्ञेय। एक ज्ञेय शब्द के तीन भेद हैं। ज्ञेय शब्द एक है, उसके तीन भेद हैं। द्रव्येन्द्रिय भी ज्ञेय, भावेन्द्रिय भी ज्ञेय और भावेन्द्रिय का विषय भी ज्ञेय। ज्ञेय अर्थात् अतीन्द्रियज्ञान में जानने लायक ज्ञेय। इन्द्रियज्ञान से जानने में नहीं आता है ज्ञेय। अतीन्द्रियज्ञान के द्वारा आत्मा को जिसने जाना, उस अतीन्द्रियज्ञान के द्वारा, वो ज्ञेय है, मेरी चीज नहीं है - ऐसा जानने में आ जाता है।

(तीनोंको) जीतकर, ज्ञेयज्ञायक-संकर नामक दोष आता था एकत्वबुद्धि-मिथ्यात्व-मोह होता था **सो सब दूर होनेसे** आहाहा! मोह छूट जाने से **एकत्वमें टंकोत्कीर्ण और ज्ञानस्वभावके**

द्वारा सर्व अन्यद्रव्योंसे परमार्थसे भिन्न ऐसे अपने आत्मा का अनुभव करता है वह निश्चयसे जितेन्द्रिय जिन है। जितेन्द्रिय जिन ये है (जो) अपने आत्मा का अनुभव करता है, वो इंद्रियों को जीत सकता है। जो आत्मा का अनुभव नहीं करता है, वो इंद्रियों को जीत सकता नहीं है, जीतता नहीं है, निर्मोह दशा नहीं होती है। आहाहा!

(ज्ञानस्वभाव अन्य अचेतन द्रव्योंमें नहीं है, इसलिए उसके द्वारा आत्मा सबसे अधिक, भिन्न ही है।) कैसा है यह ज्ञानस्वभाव? ये ज्ञानस्वभाव कैसा है? **इस विश्वके (समस्त पदार्थोंके) ऊपर तिरता हुआ** ये तीन प्रकार के जो ज्ञेय कहे हैं उन ज्ञेयों से जुदा (है); ऊपर तिरता हुआ यानि जुदा। **(उन्हें जानता हुआ भी उनरूप न होता हुआ), प्रत्यक्ष उद्योतपनेसे सदा अन्तरङ्गमें प्रकाशमान** है। ये भगवान ज्ञानस्वभावी जो आत्मा है वो निरंतर प्रकाश का पुंज, प्रकाश है। **उद्योतपनेसे सदा** तीनों काल, हमेशा **अन्तरङ्गमें प्रकाशमान, अविनश्वर,** आहाहा! जिसका नाश होता नहीं है, अविनाशी तत्त्व है। **स्वतःसिद्ध** वो आत्मा स्वतः सिद्ध है, परतःसिद्ध नहीं है। ये देह आवे, देह का जन्म हो तो आत्मा का जन्म हुआ - ऐसा है नहीं। आहाहा! आत्मा का जन्म नहीं हुआ था, वो तो देह का जन्म हुआ था। क्योंकि आत्मा जन्मता भी नहीं है और मरता भी नहीं है, वो तो अविनाशी तत्त्व है। आहाहा! वो देह की है बात सब, वो व्यवहार की बात है; वो उसमें, देह से आत्मा अलग है।

प्रत्यक्ष उद्योतपनेसे सदा अन्तरङ्गमें प्रकाशमान, अविनश्वर, स्वतःसिद्ध आहाहा! परतःसिद्ध नहीं, स्वतःसिद्ध **और परमार्थसत्** आहाहा! क्षणिकसत् नहीं, व्यवहारसत् नहीं, **परमार्थसत् - ऐसा भगवान ज्ञानस्वभाव है॥३१॥** उसका अवलंबन करने से धर्मध्यान प्रगट होता है।

मुमुक्षु: अब भक्ति का प्रोग्राम है और रवींद्र बाबू भक्ति करायेंगे। तो सबसे थोड़ा समय बैठने की विनती है।

पू. लालचंदभाई: पहले स्तुति बोलो जिनवाणी (की)।